साध्वी श्रीकुसुमवतीजी सिद्धान्ताचार्या

भारतीय संस्कृति में संत का महत्त्व

भारतीय संस्कृति में सन्त का स्थान प्रमुख है. वही भारतीय संस्कृति का निर्माता है. चिरकाल से सन्तों का जो अविच्छिन्न प्रवाह चला आ रहा है, संस्कृति उसी की घोर तपश्चर्या का सरस सुफल है. सन्तजनों ने जगत् के लुभावने वैभव से विमुख होकर और अरण्यवास करके जो अमृत पाया, उसे जगत् में वितीर्ण कर दिया. उसी से संस्कृति की संस्थापना हुई, वृद्धि हुई. समय-समय पर उस संस्कृति में भी युगानुरूप संस्कार होते गए, किन्तु उसमें भी सन्तों की साधना का ही प्रमुख हाथ रहा. यही कारण है कि भारतीय संस्कृति में ऐसी प्रचुर विशेताएँ हैं जो विश्व के अन्य देशों में दृष्टिगोचर नहीं होती. सन्त का जीवन आत्मलक्षी होने पर भी जन-जन के कल्याणार्थ होता है. उनका ज्ञान प्रसुप्त मानवजगत् को जागृत बनाने के लिये ही. वे दीपक के समान स्वयं भी प्रकाशमान हैं, और दूसरों को भी प्रकाश देते रहते हैं.

संत के जीवन का लक्ष्य यद्यपि आत्मोत्थान होता है किन्तु उसके आत्मोत्थान की प्रक्रिया इस प्रकार की होती है कि उससे दूसरों का कल्याण अनायास ही होता रहता है. परोपकार एवं परोद्धार उसकी आत्म-साधना का ही एक अंग होता है.

सन्त के जीवन का क्षण-क्षण, शरीर का कण-कण और मन का अणु-अणु परहितार्थ ही होता है.

सरवर तरुवर सन्त जन, चौथा वर्षे मेह ,
परोपकार के कारणे एता धारी देह !

समुद्र अपने पास अथाह जलराशि संचय करके रखता है वह अपने लिये नहीं, किन्तु जगत् में व्याप्त संताप को दूर करने और भूतल को शान्त करने के लिये ही. वृक्ष मधुर-मधुर फलों एवं फूलों से लदे रहते हैं, सो अपने लिये नहीं किन्तु दूसरों की क्षुधा को शान्त करने के लिये, दूसरों को सौन्दर्य और सुवास देने के लिये ही. इसी तरह सन्तजन भी अपने जीवन को परहित के लिये ही धारण करते हैं.

जिस प्रकार अगरबत्ती दूसरों को सुगन्ध प्रदान करने के लिये अपने आपको समर्पित कर देती है, अपने सम्पूर्ण शरीर को अग्निदेव की भेंट करके भी अन्य को खुशबू लुटाती रहती है; सन्त का जीवन भी ठीक इसी प्रकार का होता है. वे अपने दुःखों एवं कष्टों की परवाह न करते हुए पर-हितार्थ ही अपना सर्वस्व लुटा देते हैं.

सन्त का हृदय मक्खन के समान कोमल होता है. तुलसीदासजी ने कहा है :

संत हृदय नवनीत समाना, कहा कविन पर कहिय न जाना ,
निज दुख द्रवहि सदा नवनीता, पर दुख द्रवहिं सन्त पुनीता !

सन्त का हृदय मक्खन के समान कोमल है, यह कहना ठीक है, किन्तु स्वदुःखकातर, बेचारा मक्खन परदुःखकातर सन्त के हृदय का मुकाबला नहीं कर सकता. अतएव मक्खन की उपमा सन्त के जीवन से संगत नहीं हो सकती.

सन्त के प्राणों पर कैसा भी विषम संकट क्यों न आ पड़े, सहस्रों पीड़ाएं क्यों न उपस्थित हों, अपमान और तिरस्कार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

का गरल क्यों न पान करना पड़े, वह किसी से भी अपने पर दया करने की प्रार्थना न करेगा, ज्यों-ज्यों दुःख अपमान, तिरस्कार और घृणा की लपटें उसे झुलसाने के लिये अग्रसर होंगी, त्यों त्यों उसका जीवन वज्र के समान होता जायेगा. क्या मजाल कि उसका मन पिघल जाए, सत्त्व विचलित हो जाए. वास्तव में सन्त स्वयं के लिए हिमालय की चट्टान के समान अडिग होता है. किन्तु दूसरों के प्रति व्यवहार करने में कुसुम के समान कोमल हो जाता है :

'वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि'

सन्त का कोमल हृदय दूसरों के दुःख के भार को वहन करने में सर्वथा असमर्थ होता है.

सन्तों के प्रभाव के कतिपय उदाहरण

मानव के हृदय में रोग के जन्तु भर जाते हैं, तो उसे डाक्टर के पास जाकर इंजेक्शन लेना पड़ता है. सन्त भी एक डाक्टर हैं अतः मानव के विकार एवं पाप के जन्तुओं को दूर करने के लिये उनके पास जाना चाहिए, उनके सम्पर्क से विषाक्त मानसिक वातावरण का नाश हो जाता है.

१. समर्थ गुरु रामदास और शिवाजी :

रामदास सचमुच समर्थ रामदास ही थे. बचपन में उसका विवाह हो रहा था, और वे लग्नमण्डप में बैठे हुए थे, तब उन्होंने जैसे ही 'सावधान' शब्द सुना, वे सावधान हो गये और ऐसे सावधान हुए कि १२ वर्ष तक उनका पता नहीं लगा. फिर वे संन्यासी हो गये, और घर-घर भिक्षा मांगने लगे.

स्वामी रामदास एक पहुँचे हुए सन्त थे. उनका प्रभाव चारों ओर बिजली के समान फैल गया. उस प्रभाव से महाराज शिवाजी भी प्रभावित हुए. शिवाजी ने उन्हें अपना गुरु माना. जब अपने गुरु को भिक्षा मांगते हुए देखा तो सोचा— 'मेरे गुरु और भिक्षा माँगे, क्या मैं अकेला ही उनकी आवश्यकताएँ पूर्ण नहीं कर सकता हूँ ?' उन्होंने तत्काल पत्र लिखा, ओर अपने नौकर को देते हुए कहा—'जब स्वामीजी आवें तो उनकी झोली में यह चिट्ठी डाल देना. यथा-समय भिक्षार्थ रामदास आये तो नौकर ने वह पत्र उनकी झोली में डाल दिया. उसमें लिखा था—'महाराज, मैं अपना सारा राज्य आपको सौंपता हूँ. आप भिक्षावृत्ति त्याग दें.'

सन्त रामदास ने उसे पढ़ा और चुपचाप वहाँ से चल दिये. दूसरे दिन वे शिवाजी के पास आये और बोले—'बेटा, तुमने अपना सारा राज्य मुझे दे दिया है. बोलो, अब तुम क्या करोगे ?'

शिवाजी ने कहा—'गुरुदेव, जो आपकी आज्ञा हो. सेवा में सदा तैयार हूँ !'

रामदास ने कहा—'यह मेरी झोली उठाओ और मेरे साथ भीख मांगने चलो.'

शिवाजी बड़े विस्मित हुए पर बचनबद्ध थे. उन्होंने झोली उठा ली और रामदास के साथ भिक्षा माँगने चल पड़े. गुरु ने उन्हें सारे गाँव में अटन कराया और अन्त में नदी के किनारे आकर सबके साथ भोजन कराया. भोजनानन्तर गुरु ने शिवाजी से कहा—'बेटा, तुमने सारा राज्य मुझे दे दिया है, लेकिन अब मैं यह राज्य तुम्हें वापस सौंपता हूँ. तुम राज-काज मेरा समझकर करना और यह मेरा भगवाँ वस्त्र भी साथ रखना, जिससे तुम्हें इस राज्य के प्रति अनुरक्ति न हो.' महाराष्ट्र में आज भी उस भगवे झण्डे का महत्त्व कायम है. शिवाजी ने गुरु के कथनानुसार ही राज्य चलाया, और उसके मालिक नहीं, ट्रस्टी बनकर काम किया. रामदास का शिवाजी पर ऐसा प्रभाव पड़ा.

२. श्रेणिक और अनाथी मुनि :

मगधसम्राट् पर अनाथी मुनि का प्रभाव कैसा और किस प्रकार पड़ा, इसका वर्णन भगवान् महावीर ने उत्तराध्ययन-सूत्र के बीसवें अध्ययन में किया है. राजा श्रेणिक मण्डिकुक्ष नामक उद्यान में क्रीड़ार्थ गया. वहाँ एक वृक्ष के नीचे ध्यानमुद्रा में स्थित अनाथी मुनि को देखा.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उनको देखकर ही राजा प्रभावित हो जाता है और कहता है—'अहो इन महात्मा की कमनीय कान्ति, अतुल रूप सम्पति, क्षमा, सौम्यभाव तथा निर्लोभता आदि गुण धन्य हैं! इनकी निस्संगवृत्ति प्रशंसनीय है.'

मुनि ने ध्यान खोल कर राजा श्रेणिक को अनाथ-सनाथ का रहस्य समझाया. विशदरूप में अपना जीवन कह कर उपदेश दिया. राजा श्रेणिक अनाथी मुनि का उपदेश सुनकर इतना प्रभावित हुआ कि वह बौद्धधर्म को छोड़ कर जैन धर्मावलम्बी बन गया.

३. अंगुलीमाल और महात्मा बुद्ध :

'क्षणमपि सज्जनसंगतिरेका, भवति भवार्णवतरणे नौका'

सज्जन पुरुषों की एक क्षण की भी संगति महान् फलदायिनी होती है, वह संसार रूप समुद्र से पार लगा देती है. महात्मा बुद्ध की संगति का प्रभाव अंगुलीमाल पर ऐसा पड़ा कि वह घोर हिंसक भी अहिंसक बन गया.

श्रावस्ती के जंगल में एक लुटेरा रहता था. वह मनुष्यों को लूट कर उनकी अंगुलियाँ काट लेता था और उनकी माला बना कर पहनता था. अतः वह 'अंगुलीमाल' के नाम से प्रख्यात हो गया था. श्रावस्ती की सारी प्रजा उससे हैरान थी. राजा भी उसको अपने वश में नहीं कर सकता था. यह बात सुनकर महात्मा बुद्ध उस जंगल की ओर गये. अंगुलीमाल ने दूर से बुद्ध को आते हुए देखा तो सोचा—'इस जंगल में कोई भी अकेला आने की हिम्मत नहीं करता. यह मानव कैसे अकेला आ रहा है ? क्या इसे अपनी जान प्यारी नहीं है ?' वह बुद्ध के सामने आया और खड़ा होकर बोला —'ठहरो, आगे मत बढ़ो' तब चलते-चलते ही महात्मा ने कहा—'मैं तो खड़ा हूँ, लेकिन तुम खड़े रहो.' यह सुनकर वह लुटेरा असमंजस में पड़ गया और सोचने लगा—'यह कैसा मानव है, जो स्वयं चल रहा है फिर भी अपने को खड़ा कह रहा है. और मैं खड़ा हूँ फिर भी मुझे कहता है—'खड़े रहो.'

बुद्ध ने उस दस्यु को उपदेश देते हुए कहा—'भाई, मैं तो प्रेम और मैत्री में स्थिर हूँ, लेकिन तू अभी अस्थिर है. अतः स्थिर हो जा.' महात्मा बुद्ध की वाणी का उस लुटेरे पर ऐसा प्रभाव पड़ता है कि वह उसी क्षण तथागत का शिष्य बन गया.

४. हेमचन्द्राचार्य और कुमारपाल :

परमशैव कुमारपाल पर हेमचन्द्राचार्य का ऐसा प्रभाव पड़ा कि वह परमार्हत बन गया.

एक दिन हेमचन्द्राचार्य गोचरी (भिक्षा) लेकर आये ही थे कि कुमारपाल आचार्य के दर्शनार्थ आ पहुँचे. राजा ने अपने गुरु आचार्य के पात्र में मक्की की घाट (दलिया) देखी. कुमारपाल ने कहा—'स्वामिन् ! आप मेरे गुरु होकर यह मक्की की घाट लाते हैं ? क्या आपको सुन्दर पौष्टिक आहार नहीं मिलता ?'

आचार्य ने कहा—'इस संसार में बहुत ऐसे गरीब मानव हैं जिनको उदरपूर्ति करने को घाट भी प्राप्त नहीं होती है. उनकी अपेक्षा तो मैं बहुत ही सुखी हूँ.'

आचार्य के शरीर पर जीर्ण-शीर्ण वस्त्र देखकर कुमारपाल ने कहा—'आप मेरे जैसे राजा के गुरु होकर फटे हुए और मोटे वस्त्र क्यों धारण करते हैं ?' आचार्य ने उत्तर दिया—'राजन् ! मुझे ऐसे वस्त्र तो मिलते हैं किन्तु बहुत से गरीब लोगों को तो लज्जानिवारणार्थ फटे वस्त्र भी उपलब्ध नहीं होते हैं. कलिकालसर्वज्ञ आचार्य से कुमारपाल बहुत ही प्रभावित हुए.

५. हीरविजय सूरीश्वर और सम्राट् अकबर :

अकबर पर सूरीश्वर का ऐसा प्रबल प्रभाव पड़ा कि आचार्य ने अकबर के जीवन में अहिंसा की ज्योति जगा दी. हीरविजय सूरि अकबर के राजदरबार में जाकर उपदेश देते थे. उससे प्रभावित होकर अकबर ने अपने राज्य में 'अमारी' की घोषणा करवा दी. सच्चे संत का प्रभाव विश्व पर ऐसा पड़ता है.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संत की विशेषता

संत पुरुष के जीवन में कितनी ही आपत्तियाँ क्यों न आ पड़े, उसके चित में तनिक भी विकृति नहीं आती है. सत्य यह है कि दुःख काल में संतपुरुष का जीवन और अधिक निखरता है. शंख को अग्नि में डाल दिया जाय तो भी वह अपनी शुभ्रता नहीं त्यागता.

संत पुरुष मारणान्तिक संकट के अवसर पर भी घबराते नहीं हैं किन्तु उनके जीवन से तप-संयम का सौरभ निरंतर महकता रहता है.

कुठार चन्दन के वृक्ष को काटता है, उसका समूल नाश करता है; फिर भी चन्दन तो कुठार के मुख को भी सुवासित करता है. काटने वाले को भी सुगन्ध ही प्रदान करता है. ऐसे ही साधु जन का चाहे कोई अपकार करे या उपकार, दोनों पर उस की दया-दृष्टि समान रहती है.

साधु के लक्षण—साधु पुरुष वह है जो, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह को जीवन में धारण करके अपनी इंद्रियों को निगृहीत कर लेते हैं. सन्त पुरुष इन्द्रियों के दास नहीं होते, किन्तु 'गोस्वामी' होते हैं. वे सदा भिक्षाजीवी होते हैं और रसनेंद्रियविजयी. सहज रूप से जो भी निर्दोष रूखा-सुखा उपलब्ध हो जाय, उसे ही अपने समभाव के साँचे में ढालकर अमृत बना लेते हैं. रसनेन्द्रिय पर विजय प्राप्त करना बहुत ही दुष्कर है, किन्तु सच्चे संत के लिये कोई भी कार्य दुष्कर नहीं होता.

क्रोध की आंधी सन्त पुरुष के मन-मानस में किंचित् भी क्षोभ उत्पन्न नहीं कर सकती. मान रूप सर्प उस पर आक्रमण नहीं कर सकता. उनका अन्तःकरण निश्छल एवं सरल होता है. लोभ रूप अजगर उन्हें ग्रसित नहीं कर सकता है. उनके जीवन में कषायों का प्राबल्य नहीं होता है. वे जानते हैं कि कषायों का प्रशमन ही सन्तजीवन का सर्वोपरि लक्ष्य है. भावसत्य, करणसत्य, योगसत्य, क्षमावान्, वैराग्यवान्, मनःसमाधारणीय, वचःसमाधारणीय, कायःसमाधारणीय, ज्ञानसंपन्नता, दर्शनसम्पन्नता, चारित्रसम्पन्नता, वेदनाध्यास, मारणान्तिकसमाध्यास आदि इन सताईस गुणों से जो युक्त हों, वे ही साधु पुरुष माने जाते हैं. वे षट्निकाय जीवों की रक्षा करते हैं, आठों मदों के त्यागी होते हैं, नववाड़ सहित शुद्ध ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं, दस प्रकार के यतिधर्म, बारह प्रकार की तपस्या के और सत्रह प्रकार के संयम के पालनकर्त्ता होते हैं. उनके जीवन में चाहे कितने ही परिषह उपस्थित हों, कभी घबराते नहीं हैं, बल्कि सहर्ष परिषह सहन करते हैं, क्योंकि वे जानते हैं कि कष्टों के साथ संघर्ष करना ही आत्मिक शक्ति की वृद्धि का रहस्य है.

संत की कष्टसहिष्णुता—संत अपने प्राण बचाने के लिये, दूसरों को कष्ट की भट्टी में नहीं झोंकते. वे समय आने पर अपने प्राणों की बाजी लगाकर भी दूसरों की रक्षा ही करते हैं. कहा है :

> **'विपद्यपि गताः संतः पाप कर्म न कुर्वते,**
> **हंसः कुक्कुटवत्कीटं नात्ति किं क्षुधितोऽपि हि.'**

हंस चाहे कितने ही दिन भूखा रह जाय, कुक्कट के समान कीट भक्षण नहीं करता. ऐसे ही संतजन के जीवन में कितने ही घोर संकट क्यों न समुपस्थित हो जायं फिर भी पाप कर्म में उनकी प्रवृत्ति नहीं होती है.

मेतार्य मुनि भिक्षार्थ नगर में घूम रहे थे. बीच से एक स्वर्णकार का घर आता है, और मुनि उसके वहां भी भिक्षार्थ पधारते हैं. उस समय स्वर्णकार सोने के यव बना रहा था. उनको वहीं पर छोड़कर मुनि को आहारदान देने के लिये वह रसोई घर में जाता है. अचानक आकर एक कुक्कुट उन स्वर्ण-यवों को चुग जाता है. स्वर्णकार मुनि को भिक्षा देकर बाहर आता है तो स्वर्णयव नहीं दिखाई देते. स्वर्णकार को मुनि पर ही आशंका होती है. वह मुनि से पूछता है किन्तु मुनि एकदम मौन रहते हैं. मुनि को ज्ञात था कि स्वर्णयवों को कुक्कुट चुग गया है, किन्तु उसे प्रकट कर देने से कुक्कुट को प्राणों से हाथ धोना पड़ेगा. स्वर्णकार इस मौन का अर्थ समझता है कि स्वर्णयवों को चुराने वाला यही

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनि है. आग बबूला होकर उसने मुनि के शरीर पर सिर से लगाकर पैर पर्यन्त गीला चमड़ा गाढ़ बन्धनों से बांध दिया. ज्यों-ज्यों चमड़ा सुखता है, त्यों-त्यों मुनि के शरीर की नसों के जाल टूटने लगे. ऐसे समय में भी मुनि ने नहीं प्रकट किया कि कुक्कुट ने यव खायें हैं. अपने प्राणों की आहुति देकर भी उन्होंने उसकी जान बचाई.

वहाँ काष्ठभारी डालने वाला आता है. ज्यों ही वह काष्ठ की भारी को भूमि पर डालता है, जोर का शब्द होता है और उसके भय से कुक्कुट बीट करता है. उसमें वे स्वर्णयव निकल आते हैं. उन स्वर्णयवों को देखकर स्वर्णकार को अपनी अविचारित करनी पर महान् पश्चात्ताप होता है. वह सोचता है—'हाय, निर्दोष मुनि की हत्या का पाप मैंने कर डाला.' उसे इतना पश्चात्ताप होता है कि वह घर-बार छोड़कर उसी समय मुनि बन जाता है.

संत पुरुष के जीवन में इस प्रकार की कष्टसहिष्णुता और दयालुता होती है.

संत का आंतरिक जीवन—भ० महावीर का कथन है कि आंतरिक जीवन की पवित्रता के विना कोई भी बाह्य आचार, कोई भी क्रियाकाण्ड या गम्भीर विद्वत्ता व्यर्थ है. संख्या के विना हजारों बिन्दुओं का कोई मूल्य नहीं है, धन राशि के विना तिजोरी का कोई महत्त्व नहीं है, उसी प्रकार अन्तःशुद्धि के विना आध्यात्मिक दृष्टि से बाह्याचार का कोई मूल्य नहीं है. जो क्रियाकाण्ड केवल काय से किया जाता है, और अन्तरतर से नहीं किया जाता है, उससे आत्मा पवित्र नहीं बनती. आत्मा को निर्मल और पवित्र बनाने के लिये आत्मस्पर्शी आचार की अनिवार्य आवश्यकता है.

सभी सन्त समान तो नहीं होते किन्तु विश्व में अनेकों ही ऐसी विरल विभूतियाँ भी आपको दिखाई देगीं, जो अंतःशुद्धि पूर्वक बाह्य क्रियायें करती हैं. ऐसे व्यक्ति अभिनन्दनीय हैं. वे निःसन्देह परम कल्याण के भागी होते हैं.

संत के जीवन में प्रथम निश्चय भाव आता है और फिर व्यवहार भाव. निश्चय का अभिप्राय है, अपने मन में किसी आदर्श अथवा लक्ष्य को स्थापित करना. जब मनुष्य, जीवन का लक्ष्य निर्धारित कर लेता है तो वह सोचने लगता है कि वह कौन से मार्ग पर आगे बढ़े, कौनसी प्रेरणा लेकर चले तो लक्ष्य को प्राप्त करले ? ऐसा मानव ही बुराइयों से लड़ेगा और अच्छाइयों को ग्रहण करेगा. इस प्रकार निश्चय भाव पहिले और व्यवहार भाव बाद में आता है.

संतों का अंतर्मानस सदा जागृत रहता है. वह आंतरिक जीवन में कभी सोता नहीं है. भले ही वे ऊपर-ऊपर से सोये हुए दिखाई दें किन्तु उनका अन्तार्जीवन निरन्तर जागरूक बना रहता है. भगवान् महावीर ने फरमाया है:—"सुत्ता अमुणी, मुणिणो सया जागरंति" —आचारांग.

संत के जीवन में ज्ञान रूप ज्योति निरन्तर जगमगाती रहती है. उनके जीवन से विश्व में तप-संयम रूप सौरभ निरन्तर महकती रहती है. उनके जीवन में सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक् चारित्र का अक्षय कोष भरा रहता है. इस प्रकार सन्त का आन्तरिक जीवन तप, जप की ज्योति से जाज्वल्यमान होता हुआ विशुद्धि की ओर बढ़ता चला जाता है.